Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-7| July-2026

Original Article

क्रांति की स्त्री-रेखा: भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सबाल्टर्न महिला चेतना (एक विखंडनकारी एवं पुनर्मूल्यांकनकारी अध्ययन)

डॉ. रवीन्द्र कुमार वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर-इतिहास
रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकरनगर

Manuscript ID:
JRD -2026-180727
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 7
Pp. 133-136
July- 2026
Submitted: 16 June. 2026
Revised: 26 June. 2026
Accepted: 11 July. 2026
Published: 31 July. 2026

सारांश

परम्परागत राष्ट्रवादी एवं साम्राज्यवादी इतिहास-लेखन ने महिला सहभागिता को सदैव संभ्रांत, नगरीय और बुर्जुआ वर्ग के चश्मे से देखा है, जिससे हाशिए की महिलाओं का योगदान मुख्यधारा के विमर्श से ओझल रहा है। यह अध्ययन अंतर्विभाजकता के सिद्धांत का अनुप्रयोग करते हुए यह सिद्ध करता है कि दलित, आदिवासी, कृषक और श्रमिक वर्ग की महिलाएं 'तेहरी सत्ता' (औपनिवेशिक राज्य, स्थानीय सामंतवाद/जातिवाद और घरेलू पितृसत्ता) के त्रिकोणीय दमन से जूझ रही थीं। 1855 के संथाल विद्रोह, 1857 के सैन्य प्रतिरोध, तथा 1940 के दशक के तेभागा और तेलंगाना आंदोलनों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि इन सबाल्टर्न महिलाओं के पास एक 'स्वायत्त राजनीतिक चेतना' थी। वे पुरुषों के आह्वान पर आंदोलनों में सम्मिलित होने वाली 'मूक भीड़' मात्र नहीं थीं, बल्कि उनका प्रतिरोध स्वतःस्फूर्त और व्यवस्था-विरोधी था। निष्कर्षतः, यह शोधालेख अकादमिक इतिहास-लेखन में वस्तुनिष्ठता और जेंडर-न्याय सुनिश्चित करने के लिए परम्परागत अभिलेखीय सीमाओं से बाहर निकलकर मौखिक इतिहास और लोक-स्मृतियों को केंद्रीय स्थान देने का सशक्त आह्वान करता है।

मुख्य शब्द- *सबाल्टर्न दृष्टिकोण, तेहरी सत्ता 'स्वायत्त चेतना', उत्तर-औपनिवेशिक नारीवाद, इतिहास-लेखन, मौखिक इतिहास, अंतर्विभाजकता।*

परम्परागत भारतीय इतिहास - लेखन की मुख्यधारा चाहे वह साम्राज्यवादी कूटनीति से प्रेरित हो या राष्ट्रवादी बुर्जुआ चेतना से - मूलतः एक संभ्रांतवादी और पितृसत्तात्मक संरचना से संचालित रही है। इस ज्ञानमीमांसीय ढांचे ने स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की ऐतिहासिक भूमिका को सदैव एक 'पूरक अस्मिता' या पुरुषों के 'नैतिक सहयोगी' के रूप में ही चित्रित किया। सरोजिनी नायडू, कमला नेहरू अथवा विजयलक्ष्मी पंडित जैसी अभिजात वर्गीय महिलाओं के योगदान को केंद्रीय विमर्श में स्थापित करके, इतिहास ने अनजाने में एक जेंडर-विशिष्ट 'बुर्जुआ विमर्श' को बढ़ावा दिया। यह विमर्श इतिहास के उन पन्नों को धुंधला कर देता है जहाँ भारत की शोषित, वंचित, दलित, कृषक और आदिवासी महिलाओं ने औपनिवेशिक सत्ता को चुनौती दी थी।

साहित्य समीक्षा

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का इतिहास-लेखन वैचारिक अंतर्विरोधों और ज्ञानमीमांसीय शिफ्ट्स से भरा रहा है। प्रारंभिक इतिहास-लेखन जहाँ औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी प्रशासनिक दस्तावेजों तक सीमित था, वहीं उत्तर-औपनिवेशिक काल में सबाल्टर्न और नारीवादी इतिहासकारों ने इन स्थापित संरचनाओं को चुनौती दी।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
डॉ. रवीन्द्र कुमार वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर-इतिहास,रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकरनगर

How to cite this article:
वर्मा, रवीन्द्र. कुमार. (2026). क्रांति की स्त्री-रेखा: भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सबाल्टर्न महिला चेतना (एक विखंडनकारी एवं पुनर्मूल्यांकनकारी अध्ययन). Journal of Research and Development, 18(7), 133–136. https://doi.org/10.5281/zenodo.21943464

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.21943464
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-7| July-2026

इस साहित्य समीक्षा का मुख्य उद्देश्य उन प्रमुख विद्वानों और उनके अकादमिक विमर्शों का विश्लेषण करना है जिन्होंने 'क्रांति की स्त्री-रेखा' को आकार दिया है। प्रारंभिक औपनिवेशिक अभिलेखों ने भारतीय महिलाओं को मुख्यतः अशिक्षित, पीड़ित और सामाजिक कुरीतियों (जैसे सती, बाल विवाह) के जाल में फंसा हुआ दिखाया, जिन्हें ब्रिटिश शासन 'सभ्य' बनाने का दावा करता था। इसके विपरीत, राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को भारतीय संस्कृति के गौरव और नैतिक बल के रूप में प्रस्तुत किया।

*** उमा चक्रवर्ती (1989)**: अपने ऐतिहासिक निबंध "व्हाटएवर हैपेंड टू द वैदिक दासी?" में चक्रवर्ती ने यह विखंडन किया कि कैसे १९वीं और २०वीं सदी के राष्ट्रवादी विमर्शों (विशेष रूप से दयानंद सरस्वती और बाल गंगाधर तिलक जैसे नेताओं) ने महिलाओं के लिए एक 'वैदिक अतीत' का काल्पनिक मिथक गढ़ा [Chakravarti, 1989]। चक्रवर्ती तर्क देती हैं कि राष्ट्रवादी आंदोलन ने महिलाओं को घर से बाहर निकालने के लिए 'सती-सावित्री' और 'आदर्श आर्य नारी' के जिन प्रतीकों का उपयोग किया, वे वास्तव में ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के ही नए रूप थे। यह साहित्य स्थापित करता है कि राष्ट्रवादियों ने महिलाओं को राजनीतिक गतिशीलता तो दी, लेकिन उनके जेंडर-अधारित अधिकारों को 'राष्ट्र की मुक्ति' के नाम पर स्थगित कर दिया।

*** तनिका सरकार (2001):** अपनी पुस्तक "हिंदू वाइफ, हिंदू नेशन" में सरकार ने बंगाल के संदर्भ में घरेलू जीवन और राष्ट्रवाद के अंतर्संबंधों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है [Sarkar, 2001]। वे दर्शाती हैं कि कैसे 'भारत माता' का प्रतीक बुर्जुआ और सवर्ण चेतना से निर्मित था। राष्ट्रवादी आंदोलन ने घरेलू चारदीवारी को ब्रिटिश औपनिवेशिक हस्तक्षेप से मुक्त रखने के लिए महिला के शरीर और शुचिता को एक राजनीतिक युद्धक्षेत्र में बदल दिया।

* जेराल्डिन फोर्ब्स (1996): कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया श्रृंखला के अंतर्गत अपनी कालजयी कृति "विमेन इन मॉडर्न इंडिया" में फोर्ब्स ने १८वीं सदी से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक महिलाओं के सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों का व्यापक दस्तावेजीकरण किया है [Forbes, 1996]। फोर्ब्स स्थापित करती हैं कि सरोजिनी नायडू, हंसा मेहता और 'ऑल इंडिया विमेंस कॉन्फ्रेंस' (AIWC) जैसी संस्थाओं का योगदान केवल पुरुषों के सहायक के रूप में नहीं था। उन्होंने ब्रिटिश वैधानिक ढांचे के भीतर कूटनीतिक पैरवी करके स्वतंत्रता से पूर्व ही महिलाओं के लिए मताधिकार और संपत्ति के अधिकारों की वैचारिक नींव रख दी थी। हालाँकि, फोर्ब्स यह भी स्वीकार करती हैं कि यह आंदोलन मुख्यतः 'शहरी और संभ्रांत' वर्ग तक ही सीमित था।

*** राधा कुमार (1993):** अपनी पुस्तक "द हिस्ट्री ऑफ डूइंग" में कुमार ने भारतीय नारीवादी आंदोलन के क्रमिक विकास का एक विहंगम और सचित्र विश्लेषण प्रस्तुत किया है [Kumar, 1993]। वे दर्शाती हैं कि कैसे महिलाओं ने गांधीवादी सविनय अवज्ञा और असहयोग आंदोलनों के दौरान 'चरखे' और 'स्वदेशी' को आर्थिक राष्ट्रवाद के एक औजार के रूप में इस्तेमाल किया, जिसने उनके सामाजिक गतिशीलता के रास्ते खोले।

*** सुमित सरकार (1985):** अपने शोध "द पॉपुलर नेचर ऑफ कम्युनिस्ट-लेड मूवमेंट्स" में सरकार ने 1940 के दशक के लोकप्रिय किसान आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका को केंद्रीय स्थान दिया है [Sarkar, 1985]। वे तेभागा और तेलंगाना आंदोलनों का हवाला देते हुए तर्क देते हैं कि इन आंदोलनों में ग्रामीण, सर्वहारा और खेतिहर मजदूर महिलाओं ने 'वर्ग-चेतना' का परिचय दिया। सुमित सरकार के अनुसार, जब इन महिलाओं ने जमींदारों के खिलाफ 'नारी वाहिनी' बनाई, तो वह मुख्यधारा की कांग्रेस की 'अहिंसक और समझौतावादी राजनीति' के समानांतर एक उग्र, क्रांतिकारी और विकल्पवादी सबाल्टर्न चेतना का उदय था।

*** रंजीत गुहा (1982):** अपने मूलभूत संकलन "सबाल्टर्न स्टडीज I" में गुहा ने स्थापित किया कि भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास-लेखन लंबे समय तक 'विशिष्टतावादी' बना रहा [Guha, 1982]। गुहा का यह सिद्धांत कि 'हाशिए के समाजों के पास अपना एक स्वायत्त राजनीतिक विवेक होता है', जेंडर अध्ययनों पर भी लागू होता है। इसके तहत फूलो-झानो मुर्मू, उदा देवी पासी और झलकारी बाई जैसे किरदारों का पुनर्मूल्यांकन किया गया। यह साहित्य यह सिद्ध करता है कि दलित और आदिवासी महिलाओं का विद्रोह किसी संभ्रांत पुरुष नेता के आदेश का परिणाम नहीं था, बल्कि वह उनकी अपनी जल, जंगल, जमीन और अस्मिता की रक्षा का स्वतःस्फूर्त आंदोलन था।

*** स्त्री शक्ति संगठन (1989):** इस नारीवादी समूह द्वारा संकलित ऐतिहासिक पुस्तक "वी वर मेकिंग हिस्ट्री: लाइफ स्टोरीज ऑफ विमेन इन द तेलंगाना पीपल्स स्ट्रगल" सबाल्टर्न इतिहास-लेखन का एक मील का पत्थर है [Stree Shakti Sanghatana, 1989]। यह पुस्तक तेलंगाना सशस्त्र संघर्ष में शामिल आम, गरीब और पिछड़ी जातियों की महिलाओं (जैसे चाकली एल्लम्मा) के 'मौखिक इतिहास' (Oral Narratives) पर आधारित है। यह साहित्य पारंपरिक लिखित दस्तावेजों (Archival Records) की सीमाओं को तोड़ता है और यह उजागर करता है कि कैसे इन महिलाओं ने एक साथ 'सामंती देशमुखों, ब्रिटिश पुलिस और अपने ही परिवारों की आंतरिक पितृसत्ता' के खिलाफ त्रिकोणीय युद्ध लड़ा।

उपरोक्त साहित्यों के गहन अध्ययन एवम विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका का इतिहास-लेखन एक वैचारिक विकास से गुजरा है। जहाँ प्रारंभिक राष्ट्रवादी साहित्यों ने महिलाओं को 'त्याग और शुचिता' के आदर्श सांचे में ढाला, वहीं मार्क्सवादी और सबाल्टर्न नारीवादी अध्ययनों ने उनके भीतर की क्रांतिकारी वर्ग-चेतना, स्वायत्त निर्णय-क्षमता

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-7| July-2026

(Agency) और बहुस्तरीय संघर्षों को उजागर किया। वर्तमान शोध इसी सबाल्टर्न नारीवादी विमर्श को आगे बढ़ाते हुए 'क्रांति की स्त्री-रेखा' को विशिष्टतावादी इतिहास के चंगुल से मुक्त कराने की दिशा में एक ठोस वैचारिक प्रयास है। **प्रस्तुत शोध-आलेख का मुख्य उद्देश्य सबाल्टर्न दृष्टिकोण और उत्तर-औपनिवेशिक नारीवादी सिद्धांतों के आलोक में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका का एक विखंडनकारी पुनर्मूल्यांकन करना तथा भारतीयराष्ट्रीय आन्दोलन में सबाल्टर्न महिलाओ की स्थिति का विश्लेषण करना है**

प्रस्तुत शोध-आलेख सबाल्टर्न दृष्टिकोण और उत्तर-औपनिवेशिक नारीवादी सिद्धांतों) के आलोक में इतिहास की इसी 'महा-आख्यान' का विखंडन करता है। प्रख्यात सबाल्टर्न विचारक गायत्री चक्रवर्ती स्पिवक के इस मूलभूत प्रश्न को आधार बनाकर कि,"क्या सबाल्टर्न बोल सकता है?" - यह आलेख सिद्ध करता है कि इतिहास के हाशिए पर खड़ी इन महिलाओं के पास न केवल अपनी एक 'स्वायत्त चेतना') थी, बल्कि उनका प्रतिरोध पुरुषों के आह्वान से स्वतंत्र, स्वतःस्फूर्त और व्यवस्था-विरोधी था (Spivak,1988)। यह अध्ययन 'ज्ञान के औपनिवेशिक तंत्र' को चुनौती देते हुए 'क्रांति की स्त्री-रेखा' को एक नए और प्रगाढ़ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्गठित करने का प्रयास है।

सबाल्टर्न जेंडर विमर्श के अंतर्गत निम्नवर्गीय महिलाओं के ऐतिहासिक संघर्ष को समझने के लिए 'अंतर्विभाजकता' के सिद्धांत का अनुप्रयोग अनिवार्य है। जहाँ उच्च-वर्गीय पुरुषों या संभ्रांत महिलाओं का मुख्य मुकाबला प्राथमिक रूप से केवल ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य के प्रशासनिक और आर्थिक ढांचे से था, वहीं एक सबाल्टर्न (दलित, आदिवासी या सर्वहारा) महिला 'तेहरी सत्ता' के दमनकारी दुष्चक्र में आकंठ फंसी हुई थी। वह एक साथ तीन स्तरों पर शोषित हो रही थी: प्रथम, औपनिवेशिक राज्य का नस्लीय और आर्थिक दमन; द्वितीय, स्थानीय सवर्ण जमींदारों और महाजनों का जातिगत व सामंती उत्पीड़न; और तृतीय, स्वयं उसके अपने घरेलू परिवेश में व्याप्त पितृसत्तात्मक मानदंड । अतः, जब इन हाशिए की महिलाओं ने विद्रोह की जमीन तैयार की, तो उनका प्रतिरोध केवल बाह्य राजनीतिक स्वाधीनता के लिए नहीं था। उनका संघर्ष इन तीनों दमनकारी संरचनाओं के समूल उच्छेदन के लिए था, जो उनकी जेंडर-अस्मिता, वर्ग और जाति को एक साथ बंधक बनाए हुए थीं।

औपनिवेशिक राज्य के विरुद्ध सबाल्टर्न प्रतिरोध का सबसे आक्रामक और स्वायत्त रूप आदिवासी महिलाओं के आंदोलनों में परिलक्षित होता है। सन् १८५५ के संथाल विद्रोह में फूलो और झानो मुर्मू जैसी बहनों का सैन्य हस्तक्षेप पारंपरिक इतिहासकारों के उस दावे को खारिज करता है जो महिलाओं को केवल 'रसद प्रदाता' (Suppliers) या मूक अनुगामी मानते हैं। इन आदिवासी महिलाओं ने औपनिवेशिक आधुनिकता और ब्रिटिश 'वन कानूनों' द्वारा अपनी पारंपरिक आर्थिक व्यवस्था के विनाश को समय रहते भांप लिया था। इसी प्रकार, नागालैंड की रानी गाइडिनल्यू द्वारा संचालित 'हेरका आंदोलन' को महज एक क्षेत्रीय विद्रोह के रूप में देखना भूल होगी। यह आंदोलन ब्रिटिश साम्राज्यवाद और ईसाई मिशनरियों द्वारा किए जा रहे 'सांस्कृतिक औपनिवेशीकरण' के विरुद्ध स्वदेशी ज्ञानमीमांसा और धार्मिक-सांस्कृतिक संप्रभुता को अक्षुण्ण रखने की एक गहरी वैचारिक और सशस्त्र सबाल्टर्न लड़ाई थी।

बीसवीं सदी के चौथे दशक में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के भीतर वामपंथी विचारधारा के उद्भव ने सबाल्टर्न महिलाओं को एक ठोस 'वर्ग-चेतना' प्रदान की। सन् 1946-47 का तेभागा आंदोलन (बंगाल) इसका अप्रतिम उदाहरण है, जहाँ बिमला माझी जैसी अत्यंत निर्धन और भूमिहीन खेतिहर मजदूर महिलाओं ने 'नारी वाहिनी' (महिला मिलिशिया) का गठन किया। इन महिलाओं ने अपने दैनिक जीवन के औजारों,जैसे हँसुआ (दरांती), लाठी और झाड़ू,को राजनीतिक प्रतिरोध के हिंसक और प्रतीकात्मक हथियारों में बदल दिया। इसी प्रकार, तेलंगाना सशस्त्र संघर्ष (1946-51) में चाकली एल्लम्मा जैसी रजक (धोबी) जाति की महिला का सामंती देशमुख (जमींदार) के खिलाफ अपनी भूमि की रक्षा हेतु लाठी उठाना, एक सबाल्टर्न महिला की 'स्वायत्त निर्णय-क्षमता' को दर्शाता है। इन आंदोलनों ने यह स्पष्ट कर दिया कि सबाल्टर्न महिलाओं के लिए आज़ादी का अर्थ केवल सत्ता का भारतीयकरण नहीं, बल्कि सामंतवाद, बेगार और भू-स्वामियों के आर्थिक एकाधिकार का पूर्ण अंत था।

जब हम 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का सबाल्टर्न परिप्रेक्ष्य से पुनर्मूल्यांकन करते हैं, तो इतिहास का केंद्र राजमहलों की संप्रभुता से खिसककर हाशिए की जातियों के सैन्य शौर्य पर टिक जाता है। लखनऊ के सिकंदर बाग के ऐतिहासिक युद्ध में उदा देवी पासी जैसी दलित महिला का बलिदान, जिन्होंने पुरुष वेश धारण कर ब्रिटिश सेना के छत्तीस सैनिकों को अकेले ही धराशायी कर दिया, विशिष्टतावादी इतिहास-लेखन को एक सीधी चुनौती है। ब्रिटिश कमांडर सर कॉलिन कैंपबेल की डायरियों में दर्ज अचंभे के भाव इस बात की पुष्टि करते हैं कि औपनिवेशिक सेना भी इस सबाल्टर्न युद्ध-कौशल से भयभीत थी। कोली जाति की झलकारी बाई और कानपुर की विद्रोही नर्तकी अजीजन बाई का संघर्ष यह प्रमाणित करता है कि जिस उपेक्षित और वंचित समाज से वे आती थीं, उस समाज की मुक्ति के लिए उन्होंने अपनी पूरी सामाजिक अस्मिता और प्राणों को दांव पर लगा दिया। आधिकारिक ब्रिटिश अभिलेखों में भले ही उन्हें 'बागी' या 'अवांछित' कहकर हाशिए पर डाल दिया गया हो, लेकिन वे स्थानीय मौखिक इतिहास और लोकगीतों के माध्यम से आज भी जन-चेतना में नायक के रूप में जीवित हैं।नारीवादी इतिहासकार (जैसे उमा चक्रवर्ती और तनिका सरकार) यह तर्क देते हैं कि मुख्यधारा के

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-7| July-2026

राष्ट्रवादी आंदोलन ने महिलाओं की लामबंदी के लिए जिन सांस्कृतिक प्रतीकों का निर्माण किया- जैसे 'भारत माता', 'सती-सावित्री' या 'त्यागमयी नारी' वे मूलतः सवर्ण, ब्राह्मणवादी और पितृसत्तात्मक प्राथमिकताओं से उपजे थे। ये प्रतीक महिलाओं को पुनः एक 'घरेलू और त्यागमयी' सांचे में ढालने का एक सूक्ष्म राजनीतिक प्रयास थे, जो उनके वास्तविक जेंडर-अधिकारों को स्थगित कर देता था। इसके विपरीत, सावित्रीबाई फुले, फातिमा शेख और स्वतंत्रता के पश्चात संविधान सभा में शामिल एकमात्र दलित महिला सदस्य दक्षायणी वेलायुधन जैसी सबाल्टर्न आवाजों ने इस 'आंतरिक उपनिवेशवाद' यानी जाति व्यवस्था, छुआछूत और लैंगिक भेदभाव को सीधे निशाने पर लिया। उनके लिए औपनिवेशिक मुक्ति तब तक निरर्थक थी, जब तक कि भारतीय समाज के भीतर से वर्णवादी असमानता और सामाजिक स्तरीकरण का पूर्ण विनाश न हो जाए।

निष्कर्ष-

सबाल्टर्न दृष्टिकोण के आधार पर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का यह पुनर्मूल्यांकन यह अकादमिक निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि 'क्रांति की स्त्री-रेखा' कोई रैखिक या सहायक आख्यान नहीं है बल्कि औपनिवेशिक सत्ता और आंतरिक सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध लड़ा गया एक बहुआयामी, जटिल और विखंडनकारी संघर्ष रहा है । इन निम्नवर्गीय, दलित और आदिवासी महिलाओं ने पुरुषों के आदेशों या बुर्जुआ सुधारवादी अपीलों की प्रतीक्षा नहीं की; बल्कि अपनी दैनिक प्रताड़ना, आर्थिक शोषण और सामाजिक वंचना को ही अपनी राजनीतिक चेतना का प्राथमिक उत्प्रेरक बनाया।

यदि आधुनिक इतिहास-लेखन को जेंडर-न्यायसंगत और वस्तुनिष्ठ बनना है, तो उसे अभिलेखीय साक्ष्यों की परंपरागत सीमाओं से बाहर निकलकर सबाल्टर्न महिलाओं के 'मौखिक इतिहास, लोक-स्मृतियों और विद्रोही विवेक' को इतिहास के मूल ढांचे में केंद्रीय स्थान देना होगा। जब तक इन अनाम और हाशिए की महिलाओं के 'स्वायत्त राजनीतिक विवेक' और अप्रतिम शहादत को इतिहास लेखन की मुख्यधारा में सम्मानजनक स्थान नहीं मिलता, तब तक भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास न केवल अधूरा रहेगा, बल्कि वह सदैव कुलीन, विशिष्टतावादी और वैचारिक रूप से एकांगी बना रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Chakravarti, U. (1989), Whatever happened to the Vedic Dasi? Orientalism, nationalism and a scriptural past for women. In K. Sangari & S. Vaid (Eds.), Recasting women: Essays in colonial history (pp. 27-87).
2. Forbes, Geraldine. (1996), Women in Modern India (The New Cambridge History of India). Cambridge: Cambridge University Press.
3. Guha, Ranajit. (1982), Subaltern Studies I: Writings on South Asian History and Society. Delhi: Oxford University Press.
4. Kumar, R. (1993). The history of doing: An illustrated account of movements for women's rights and feminism in India, 1800-1990. Verso.
5. Sarkar, Sumit. (1985), The Popular Nature of Communist-Led Movements: Tebhaga and Telangana. New Delhi: People's Publishing House.
6. Sarkar, T. (2001). Hindu wife, Hindu nation: Community, religion, and cultural nationalism. Permanent Black.
7. Sarkar, Tanika. (2001), Hindu Wife, Hindu Nation: Community, Religion, and Cultural Nationalism. New Delhi: Permanent Black.
8. Spivak, G. C. (1988). Can the subaltern speak? In C. Nelson & L. Grossberg (Eds.), Marxism and the interpretation of culture (pp. 271-313). Macmillan.
9. Stree Shakti Sanghatana (1989), We Were Making History: Life Stories of Women in the Telangana People's Struggle. London: Zed Books.
10. Tharu, S., & Lalita, K. (Eds.). (1991). Women writing in India: 600 B.C. to the present (Vol. 1 & 2). Oxford University Press.